10

हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास

प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने काव्य के दो भेद किये हैं—दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य—'दृश्य श्रव्यत्व भेदेन पुनः 'काव्यम् द्विधामतम्'। श्रव्य काव्य के अन्तर्गत मुक्तक और प्रबन्धकाव्य आदि आते हैं और दृश्यकाव्य के अन्तर्गत नाटक। नाटक काव्य का सर्वाधिक रमणीक रूप है—'काव्येषु नाटकं रम्यम्'। अरस्तू ने भी ड्रामा को काव्य का प्रमुख भेद माना है। यद्यपि उसने ड्रामा के सम्बन्ध में अलग से विचार नहीं किया, बल्कि कला और काव्य सिद्धान्त के विवेचन के प्रसंग में अपना मंतव्य प्रकट किया है। नाटक दृश्यकाव्य है, इसलिए मनुष्यों की रुचि इसकी ओर अधिक रमती है। भिन्न रुचि रखने वाले व्यक्तियों को समान रूप से आनन्द लेने का एक मात्र साधन नाटक ही है।

हिन्दी नाटक—उद्‌भव और विकास

हिन्दी में नाटक साहित्य के उद्‌भव को लेकर अनेक मतवाद हैं। डॉ० दशरथ ओझा ने सं. 1289 में रचित 'गयसुकुमार रास' को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक सिद्ध किया है, किन्तु डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने इसे 'रासक' या 'रास' श्रेणी का काव्य कहा है तथा उसे नाटक मानने से अपनी असहमति व्यक्त की है। कुछ विद्वानों ने ब्रजभाषा में रचित पौराणिक नाटकों के द्वारा हिन्दी नाटकों के जन्म को मान्यता प्रदान की है। इसके विपरीत पं० हरप्रसाद शास्त्री ने अनुसंधानों में हिन्दी नाटक के उद्‌गम के प्रश्न को उन प्रचलित जन नाटकों की परम्परा से जोड़ दिया है जो पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित थी। जिस समय भारत के पूर्वी प्रदेशों, मिथिला, असम, उड़ीसा आदि में मैथिलि नाटक साहित्य का विकास हो रहा था, उसी समय ब्रजक्षेत्र में रास-लीला नाटकों का उद्‌भव हुआ। बंगला में यात्रा (जात्रा), बिहारी में विदेशियाँ, अवधी, पूर्वी हिन्दी, ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में रास, स्वांग, नौटंकी, भांड़ आदि जन-नाट्यों की धारा प्रवाहित हो रही थी। इन्होंने एक सीमा तक हिन्दी नाटकों के अभ्युदय में अपनी भूमिका का निर्वाह किया, किन्तु हिन्दी नाटकों के जन्म के मूल में केवल यही लीलाएँ थीं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। जन नाटकों और हिन्दी नाटकों के

Scanned with CamScanner

बीच अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास पारसी थियेटर कम्पनियों का समय आता है। इसने भी हिन्दी नाटक तथा हिन्दी रंगमंच की उत्पत्ति तथा स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मैथिली भाषा में रचित नाटक साहित्य में विद्यापति का 'गोरक्ष-विजय', गोविन्द का 'नलचरित नाटक (1639 ई०), रामदास झा का 'आनन्दविजय' नाटक, देवानन्द का 'उषाहरण', रमापति उपाध्याय का 'रुक्मिणीहरण', उमापति उपाध्याय का 'पारिजात हरण' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। यह परम्परा आगे तक विकसित होती गई है, लेकिन हमारा उद्देश्य नाटक (हिन्दी) के पूर्व की स्थिति पर विचार करना है न कि मैथिली नाटक का इतिहास प्रस्तुत करना।

भारतेन्दु पूर्व ब्रजभाषा में रचित नाटक दो प्रकार के हैं—अनूदित-मौलिक। अनूदित नाटकों में महाराज यशवन्त सिंह द्वारा अनूदित 'प्रबोधचन्द्रोदय', नेवाज कवि द्वारा 'शकुन्तला नाटक' सोमनाथ माथुर द्वारा 'माधव विनोद' इत्यादि है। मौलिक नाटकों में प्राणचन्द का 'रामायण महानाटक' लद्दिराम कृत 'करुणाभरण', उदय कृत 'राम करुणाकर' एवं 'हनुमन्नाटक' आदि का उल्लेख है। ये सभी नाट्य कला की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। ये पद्यात्मक प्रबन्ध हैं जिनमें काव्य गुणों का भी अभाव है 'आनन्द रघुनन्दन' ही ऐसी रचना है जिसमें शास्त्रीय नियमों के अनुसार नान्दी, विष्कंभक, भरतवाक्य आदि का प्रयोग किया गया है और रंग निर्देश भी दिये गये हैं। इसी आधार पर आचार्य शुक्ल जैसे विद्वानों ने महाराजा विश्वनाथ जू कृत 'आनन्दरघुनन्दन' को हिन्दी का प्रथम नाटक कहा है, किन्तु इसमें नाट्य-दृष्टि से अनेक दोष हैं।

गोपाल चन्द्र 'गिरिधर' दास कृत 'नहुष' (1857) नाट्य-कला की दृष्टि से भले ही लिखा गया हो, वह भी अन्य ब्रजभाषा नाटकों की ही भाँति है। शीतला प्रसाद त्रिपाठी का 'जानकी मंगल' नाट्य-गुणों से युक्त है तथा इसकी भाषा भी परिमार्जित खड़ी बोली है। इस समय तक भारतेन्दु बाबू 'हरिश्चन्द्र' का आविर्भाव हो चुका था और उनका 'विद्यासुंदर' नाटक प्रकाशित भी हो गया था। अतः हिन्दी नाटकों का वास्तविक आरम्भ भारतेन्दु बाबू 'हरिश्चन्द्र' से ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

आधुनिक हिन्दी नाटक

सन् 1850 ई० के बाद से आधतन हिन्दी नाटकों को चार खण्डों में विभक्त किया जा सकता है।

1. भारतेन्दु-युग 2. प्रसाद युग 3. प्रसादोत्तर युग 4. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक युग

1. भारतेन्दु युग—भारतेन्दु युग हिन्दी नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। भारतेन्दु का आविर्भाव हिन्दी नाटक साहित्य के लिए एक वरदान साबित हुआ। वस्तुतः वे नाटक के जन्मदाता ही नहीं, वरन् हिन्दी साहित्य में युग प्रवर्त्तक के रूप में समादृत हुए। उनका प्रथम नाटक 'विद्यासुंदर' जो किसी बंगला नाटक का छायावाद था, सन् 1861 ई० में प्रकाशित हुआ था। भारतेन्दु के नाटकों में कुछ अनूदित हैं और कुछ मौलिक। उनके मौलिक नाटकों में 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्' 'चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'सती प्रताप', 'अंधेर नगरी' है। संस्कृत में अनुवादित—'रत्नावली' 'पाखण्ड-विडम्बन', 'मुद्राराक्षस', 'धनंजय-विजय', 'कर्पूरमंजरी', बंगाल से अनुवादित—'भारत जननी' 'विद्या सुंदर', 'सत्यहरिश्चन्द्र' उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु ने शेक्सपीयर के 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' का 'दुर्लभ बन्ध' नाम से अनुवाद किया जिसका विशेष महत्त्व है। भारतेन्दु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर आधारित हैं। उन्होंने अपने समय की समस्याओं को देखा-सुना और

Scanned with CamScanner

जाँचा-परखा। यही कारण है कि उन्होंने सामाजिक बुराइयों, अधिकारियों के भ्रष्ट आचरण और शासकीय अत्याचार पर तीखा व्यंग्य करते हुए राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में नाटक और रंगमंच की भूमिका का सार्थक उपयोग किया। 'पाखण्ड-विडम्बन' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। 'भारत दुर्दशा' में भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत की गई है। इस नाटक के माध्यम से पहली बार राजनीतिक विषय को नाटक का कथ्य बनाकर देश की दीन-हीन दशा पर चिन्ता प्रकट करते हुए उन्होंने अपने भावों को निर्भीकतापूर्वक वाणी प्रदान की। 'विषस्य विषमौषधम्' में देशी नरेशों की दुर्दशा का चित्रण है इसके साथ ही उन्हें यह भी चेतावनी दी गई है कि अगर वे सचेत एवं जागरूक नहीं हुए तो सभी देशी रियासतों को अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला लिया जायेगा। 'अंधेर नगरी' में लोभ तथा अज्ञानता के दुष्परिणाम तथा अन्य प्रचलित बुराइयों पर आक्षेप किया गया है।

भारतेन्दु के नाटकों की प्रमुख विशेषता है—प्राचीनता और नवीनता का समन्वय। उनकी नाट्य शैली पर जहाँ संस्कृत के नाटकों की छाप है, वहीं पाश्चात्य नाट्य-शैली का प्रभाव भी देखा जा सकता है। चूँकि भारतेन्दु को बंगला, संस्कृत, प्राकृत व अंग्रेज़ी के नाट्य साहित्य का ज्ञान था, इसलिए उनके नाटकों पर इन सभी का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। उनकी नाट्य-शैली में सरलता, स्वाभाविकता और रोचकता विद्यमान है। उन्होंने हिन्दी नाटकों की परम्परा को विकासमान बनाये रखने के लिए भारतीय नाट्य-कला की ओर विशेष ध्यान दिया, लेकिन अन्धानुकरण कभी नहीं किया।

भारतेन्दुयुगीन नाटककार—भारतेन्दु ने अपने समकालीन रचनाकारों को साहित्य-सर्जन हेतु प्रोत्साहित किया, प्रेरणा दी और उनका पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने न केवल नाट्य-सृजन किया, नाट्य-सिद्धान्तों पर विचार किया, बल्कि नाटकों में अभिनय भी किया और मंडलियों (नाट्य) की स्थापना भी की। यही कारण है कि उनके समकालीन अधिकांश नाटककारों में नाट्य-सृजन के समय ही अभिनयादि प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। भारतेन्दुयुगीन नाटकों में मौलिक, अनूदित और प्रहसन आदि आते हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से इनमें पौराणिकता, ऐतिहासिकता, सामाजिकता, राष्ट्रीयता और रोमांटिकता का स्वर प्रधान रहा है। नीतिपरक नाटकों का लेखन हुआ। संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद भी हुए। प्रहसनों की संख्या अधिक रही। इसका कारण यह था कि तत्कालीन परिस्थितियाँ इसके अनुकूल थीं। प्रहसनों का मुख्य उद्देश्य रूढ़ियों, परम्पराओं और अंधविश्वासों पर तीखा व्यंग्य करना था। भारतेन्दुयुगीन नाट्य-साहित्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

इस युग के प्रमुख नाटककारों में श्रीनिवासदास का नाम उल्लेखनीय है। 'प्रह्लादचरित', 'तप्तासंवरण', 'रणधीर-प्रेममोहिनी' और 'संयोगिता स्वयंवर' ये चार नाटक उनकी नाट्य-प्रतिभा के परिचायक हैं। 'तप्तासंवरण' और 'रणधीर प्रेममोहिनी' के कथानक काल्पनिक हैं। 'रणधीर प्रेममोहिनी' हिन्दी का सर्वप्रथम दुखान्त नाटक है।

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना की। इन्होंने प्रहसन लिखा तथा बंगला के दो नाटकों का अनुवाद भी किया। इनके नाटक हैं—'दमयन्ती स्वयंवर' 'वेणीसंहार', 'किरातार्जुनीय', 'वृहन्नला', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'नई रोशनी का विष' आदि। भट्ट जी की नाट्य-शैली पर संस्कृत नाट्य-शैली का प्रभाव है।

राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रताप सिंह', 'महारानी पद्मावती' तथा 'दुःखिनी बाला' नामक नाटकों की रचना की। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने 'हम्मीर हठ', 'गौसंकट', 'कलिकौतुक रूपक',

Scanned with CamScanner